योगवाणी

वर्ष ५१, फरवरी २०२६

योगवाणी

वर्ष ५१, फरवरी, २०२६

आर.एन.आई. २९०७५/७६

"मानव जीवन में योग की साधना की परम उपयोगिता सहज सिद्ध है। योग ही एक ऐसा निरपेक्ष साधन मार्ग है जिसके आश्रय में सर्व सामान्य को जीवन की व्यवहारिकता और सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान सुलभ होता है"

राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

वार्षिक सदस्यता : १२५/-
द्विवार्षिक सदस्यता : २५०/-
पंचवार्षिक सदस्यता : ६००/-
आजीवन सदस्यता : १२००/-
एक प्रति का मूल्य : १५/-

मुद्रक:
मोती पेपर कनवर्टर्स
डी-4/1, सेक्टर 13
गीडा, गोरखपुर
दूरभाष : 0551-2580093

विषयानुक्रम

पृष्ठ

जीवनामृत

श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः ०२

योगामृत ०३

गोरखवाणी ०४

राशियों का मासफल ०५

नाथपन्थ एवं दर्शन

गुरु श्री गोरक्षनाथ : अवतार एवं इतिहास ०७
- योगी आदित्यनाथ

महाराष्ट्र की उत्तरवर्ती नाथ परम्परा ११
- डॉ0 दिवाकर पाण्डेय

सन्तों की साधना पद्धति : कबीर के सन्दर्भ में १५
- ब्रजेन्द्र कुमार सिंघल

जीवात्मा के स्थूल शरीर का उत्पत्ति-क्रम २७

धर्म, संस्कृति एवं अध्यात्म

प्रस्थानत्रयी- राजेश्वराचार्य संस्कृतम् २९

मानव जीवन का परमलक्ष्य है परमानन्द ३०
- आचार्य हृदयनारायण शुक्ल

चतुर्थ आवरण

फलों की रानी नारंगी

॥ ॐ नमो भगवते गोरक्षनाथाय ॥

योगवाणी

(धर्म-संस्कृति, अध्यात्म एवं योग प्रधान पत्रिका)

संस्थापक-सम्पादक

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ

प्रधान सम्पादक

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. प्रदीप कुमार राव

सम्पादक

डॉ. प्रांगेश कुमार मिश्र

प्रकाशक

श्री गोरखनाथ मन्दिर

गोरखपुर - २७३०१५

web: www.gorakhnathmandir.in

E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com

दूरभाष : (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४

॥ श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः ॥

देयाद्वो मङ्गलानां, भुवि ततिमनिशं, यस्य दृक्पातमात्रं
प्रादुर्भूतप्रभावाद्रचयति भुवनं, विश्वयोनिः समग्रम् ।
क्षोणीभारं विधत्ते, शिरसि फणिपतिः, शम्भुरत्ति प्रपञ्चं,
सोऽयं श्रीआदिनाथः, सुरनिकरशिरोरत्ननीराजिताङ्घ्रिः ॥१॥

अहो ! नुमः श्रीयुतपादपद्मं, मत्स्येन्द्रनाथस्य मनोज्ञमूर्तेः ।
सापत्यभावं प्रविहाय यत्र, चक्रे निवासं कमला च गीश्च ॥२॥

यश्चादौ पद्मयोनिर्विसृजति निखिलं, स्वस्वकर्मानुकूलं,
यश्चान्ते रूद्रनामा, प्रलय इव जनं, मोहलीनं करोति ।
यः स्थाने विष्णुदेहस्त्रिजगदवनकृतं, सिद्धयोगात्मकोऽसौ,
गोरक्षो वाञ्छितानां ततिमनवरतं, वः प्रदेयात् त्रिमूर्तिः ॥३॥

योगामृत

गोरक्ष उवाच :-

गुरूजी ! कौन मुख बैठे ? कौन मुख चले?
कौन मुख बोले ? कौन मुख मिले?
कौन सुरति में निर्भय रहे?
सतगुरू होई सो बुझाय कहे॥७७॥

भावार्थ- हे गुरु जी! साधक को साधना पथ में उठना, बैठना और बोलना, मिलना, चलना तथा निर्भय कैसे रहना चाहिये।

मत्स्येन्द्र उवाच :-

अवधू ! सुरति मुख बैठे, सुरति मुख चले!
सुरति मुख बोले सुरति मुख मिले?
सुरति निरन्तर निर्भय रहे,
ऐसा विचार मत्स्येन्द्र कहे ॥७८॥

भावार्थ- हे शिष्य ! साधक को साधना पथ में महान सावधानी से सदैव साधनोन्मुख तत्पर रहना, चलना, उठना, मिलना, बैठना आदि क्रिया करते हुये पूर्णतः अन्तर्मुखी निर्भयता से रहना चाहिये।

गोरक्ष उवाच :

गुरूजी ! कौन सो शब्द ? कौन सो सुरति ?
कौन सो पवन ? कौन सो निरति ?
दुविधा मेट कैसे रहे ?
सतगुरू होय सो बुझाय कहे । ७८ ॥

भावार्थ- हे गुरु जी! शब्द कौन है, सुरति क्या है! शरीर के बन्ध क्या हैं ? और यह बन्धन कैसे मिटे।

मत्स्येन्द्र उवाच :-

अवधू ! अनहद शब्द चेतन सो सुरति, स्वासा पवन निरालम्ब निरति ॥
दुविधा मेटि सहज में रहे, ऐसा विचार मत्स्येन्द्र कहे ॥ ८० ॥

भावार्थ- हे शिष्य ! शब्द सीमा-आकार रहित है, श्रेष्ठ साधन प्रवृति मुमुक्षु-वृति ही सुरति है। अन्तर्मुख-वृति आशा ही शरीर और जीव का जड़-चेतन बन्ध है। बहिरंग विषय भोगिणी इच्छाओं-आशाओं का बन्ध होकर साधना में लगा रहे तो जीव बन्ध से निवृत होकर मुक्त स्वरूप में स्थित रहे।

(गोरक्ष-मत्स्येन्द्र संवाद)

गोरखवाणी

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन-सिषर महि बालक बोलै ताका नाँव धरहुगे कैसा ॥१॥

परमतत्त्व, परमात्मा अगम्य और अगोचर है। न तो वह भाव (सत्) है और न अभाव (असत्) ही है, सत्-असत् दोनों से अतीत पद में वह चैतन्य, सच्चिदानंदघन परमात्मा स्वतः अभिव्यक्त है। वह बालक की तरह निष्प्रपंचतम अभिज्ञान से परिलक्षित निष्पक्ष निर्मल चेतन ब्रह्म, पाप-पुण्य विकार से सर्वथा परे, जीवन-मरण की अवस्था से सदैव अबाधित, रूप-नाम से रहित परमात्म चौतन्य ही योगियों, परमज्ञान से युक्त सिद्ध संत-महात्माओं और आत्मविज्ञानियों का ध्येय तथा साध्य है। जिसका कोई नाम-रूप करना असंभव है।

अदेषि देषिबा देषि बिचारिबा अदिसिटि राषिबा चीया।
पाताल की गंगा ब्रह्मांड चढ़ाइबा तहां बिमल बिमल जल पीया ॥२॥

परब्रह्म परमात्मा अलक्ष्य (अलख) है, निरंजन और सर्वथा त्रिगुणातीत-निर्गुण तथा निराकार है। उसका अनुभव करने के बाद उसे चित्त में अधिष्ठित, सुव्यक्त कर लेना चाहिए। ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए मणिपूरचक्र, पाताल में स्थित गंगा, परम ज्योति (योग-शक्ति कुंडलिनी) को ब्रह्मांड (ब्रह्मरंध्र, सहस्रार अथवा सहस्रदलकमल) में उन्मुख (प्रबुद्ध) कर वहाँ परब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिए। ब्रह्मरंध्र में कुंडलिनी के सम्मिलन से अमृत, अमता अथवा सनातन, अक्षय-अव्यय ब्रह्मपद का रसानुभव सुगम हो जाता है।

सबदी (१-२)

राशियों का मासफल

रविवार ०१फरवरी २०२६ से २८ फरवरी २०२६ शनिवार तक

*डॉ0 दिग्विजय शुक्ल

मेषः आपके कार्यक्षेत्र में नई जिम्मेदारियाँ बढ़ सकती हैं जिससे कार्यभार भी अधिक रहेगा। यद्यपि परिश्रम अधिक करना पड़ेगा, फिर भी उसका प्रतिफल आपको भविष्य में अवश्य मिलेगा। आर्थिक दृष्टि से खर्चों में वृद्धि होगी। पारिवारिक जीवन सामान्य रहेगा, किन्तु वाणी पर संयम रखना आवश्यक है।

वृषभः यह मास आपके लिए स्थिरता और संतुलन लेकर आएगा। नौकरी या व्यवसाय में वरिष्ठ अधिकारियों का सहयोग प्राप्त होगा तथा कार्यों में निरंतर प्रगति देखने को मिलेगी। आर्थिक स्थिति में सुधार होगा और बचत के नए अवसर बनेंगे। पारिवारिक वातावरण सुखद रहेगा और घर में सामंजस्य बना रहेगा। स्वास्थ्य सामान्य रहेगा। जल्दबाजी से बचना उचित रहेगा।

मिथुनः यह माह परिवर्तनकारी सिद्ध होगा। कार्यक्षेत्र में स्थानान्तरण, यात्रा या नए संपर्कों से लाभ मिलेंगे। व्यवसाय में संवाद कौशल आपकी सबसे बड़ी शक्ति बनेगी। आर्थिक स्थिति मध्यम रहेगी, आय और व्यय में संतुलन बनाए रखना आवश्यक होगा। पारिवारिक जीवन में बातचीत से ही समस्याओं का समाधान संभव होगा।

कर्कः आपके लिए यह मास परिश्रम का फल देने वाला सिद्ध होगा। लम्बे समय से किए जा रहे प्रयासों के सकारात्मक परिणाम मिलेंगे। रुका हुआ धन वापस होगा। पारिवारिक जीवन में भावनात्मक सहयोग प्राप्त होगा, जिससे मानसिक शान्ति बनी रहेगी। स्वास्थ्य सामान्य रहेगा, तनाव से दूर रहना आवश्यक है।

सिंहः इस राशि वालों के लिए यह मास आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता को बढ़ाने वाला रहेगा। कार्यक्षेत्र में आपकी योग्यता की सराहना होगी और पद-प्रतिष्ठा में वृद्धि संभव है। आर्थिक दृष्टि से लाभ के योग बनेंगे। स्वास्थ्य की दृष्टि से पीठ सम्बन्धी कष्ट हो सकते हैं। पारिवारिक जीवन में सामंजस्य बनाए रखने हेतु अहंकार से बचना आवश्यक होगा।

कन्याः यह मास योजनाओं की सफलता का संकेत देता है। कार्यक्षेत्र में आपकी सूझबूझ और मेहनत रंग लाएगी। आर्थिक स्थिति संतुलित रहेगी। अनावश्यक खर्चों से बचना उचित रहेगा। पारिवारिक जीवन सामान्य रहेगा। अत्यधिक पूर्णता की चाह कभी-कभी तनाव का कारण बन सकती है।

तुला: यह माह साझेदारी और सम्बन्धों के लिए अनुकूल रहेगा। कार्यक्षेत्र में सहयोग से लाभ होगा। आर्थिक स्थिति सन्तुलित बनी रहेगी। दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन में मधुरता आएगी। स्वास्थ्य सामान्य रहेगा। निर्णय लेते समय दुविधा से बचें और समय पर कदम उठाएँ।

वृश्चिक: आपका गोपनीय प्रयास सफलता देने वाला रहेगा। कार्यक्षेत्र में आपकी रणनीति कारगर सिद्ध होगी। आर्थिक स्थिति में अचानक लाभ की सम्भावना है। स्वास्थ्य की दृष्टि से मानसिक तनाव बढ़ सकता है। पारिवारिक जीवन में विश्वास बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक होगा। किसी से भी अपनी योजनाएँ साझा करने से पहले सोच-विचार करेंगे।

धनु: यह समय ज्ञान वृद्धि और आत्मविकास का रहेगा। कार्यक्षेत्र में प्रशिक्षण, अध्ययन या नई तकनीक सीखने के अवसर मिल सकते हैं। आर्थिक स्थिति सामान्य रहेगी। यात्रा के योग बनते हैं, जो लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। स्वास्थ्य सामान्य रहेगा। अनुशासन बनाए रखना आवश्यक है। लक्ष्य को स्पष्ट रखें और उसी दिशा में प्रयास करें।

मकर: यह माह उन्नति और उपलब्धियों का संकेत देता है। कार्यक्षेत्र में आपकी मेहनत को पहचान मिलेगी और पदोन्नति या सम्मान के योग बन सकते हैं। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ रहेगी। पारिवारिक जीवन सन्तुलित रहेगा। परिवार को समय कम दे पाएँगे। स्वास्थ्य की दृष्टि से बचाव रखना आवश्यक होगा।

कुंभ: यह माह नवाचार और नए विचारों का रहेगा। कार्यक्षेत्र में नए प्रयोग सफल हो सकते हैं और आय के नए स्रोत बन सकते हैं। आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। मित्रों से लाभ प्राप्त होगा। स्वास्थ्य सामान्य रहेगा। नियमों और मर्यादाओं का पालन करना आपके लिए लाभकारी सिद्ध होगा।

मीन: इस माह में आपकी रचनात्मकता, भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता का योग रहेगा। कार्यक्षेत्र में कला, लेखन या रचनात्मक कार्यों से जुड़े रहेगें। कार्यक्षेत्र में विशेष सफलता मिल सकती है। आर्थिक स्थिति सामान्य रहेगी। भावनाओं में बहकर खर्च करने से बचेंगे। आध्यात्मिक गतिविधियाँ मानसिक शान्ति प्रदान करेंगी।

■

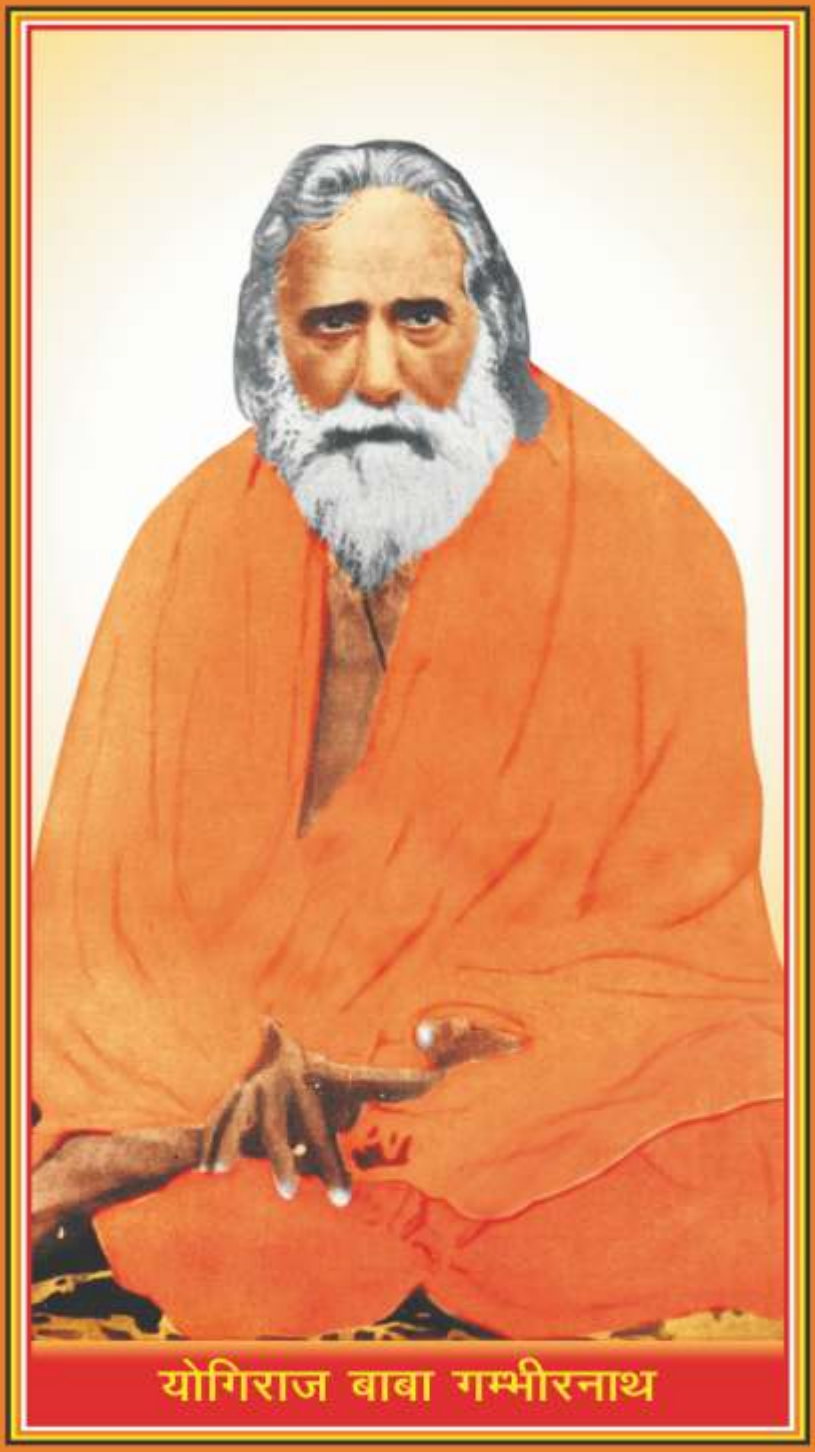

योगिराज बाबा गम्भीरनाथ

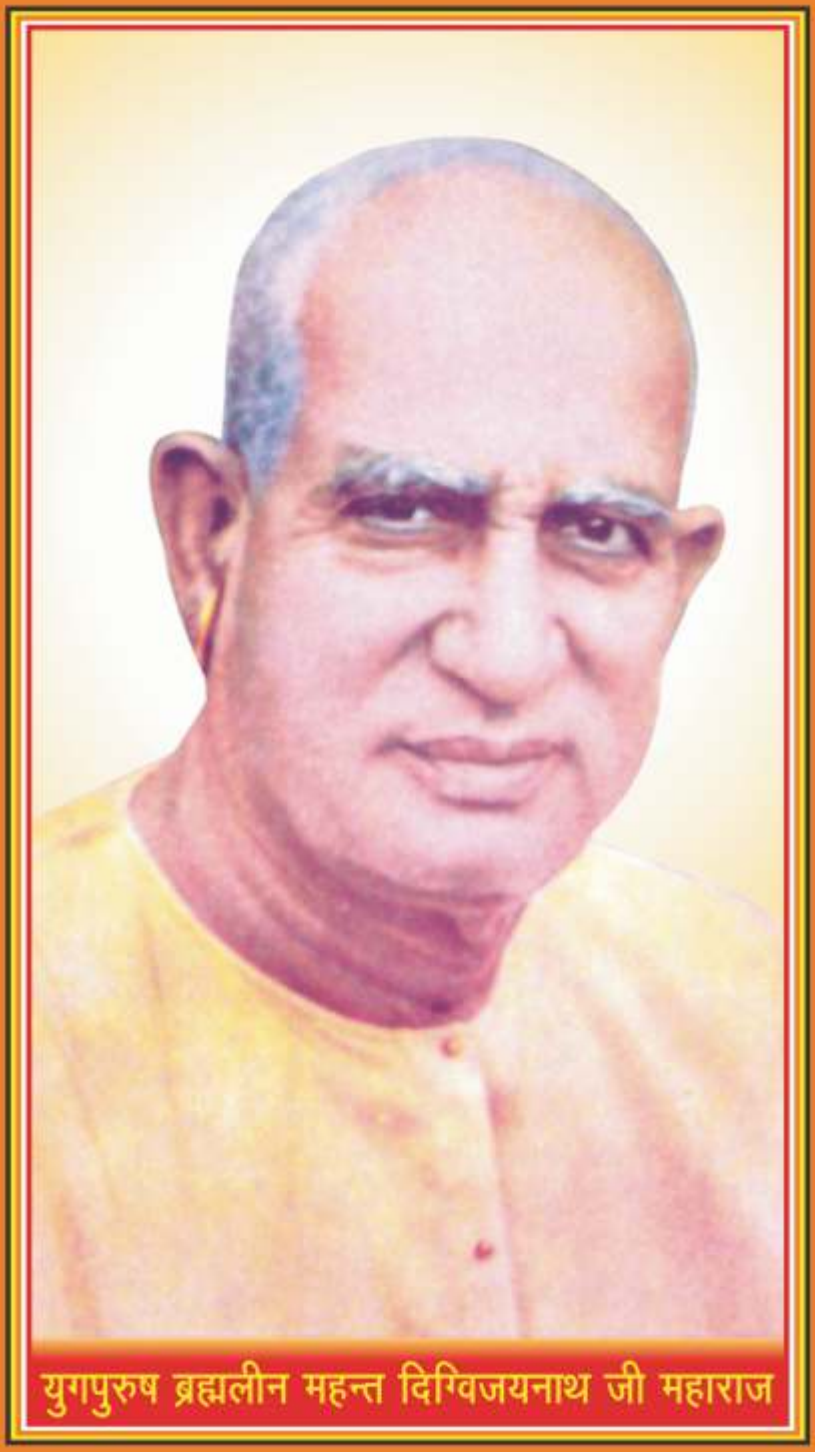

युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज

गुरु श्री गोरक्षनाथ : अवतार एवं इतिहास

*योगी आदित्यनाथ

महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ अवतारी महापुरुष थे। वे एक ऐसे योगी थे, जिनसे प्रभु श्रीराम और श्रीकृष्ण भी चमत्कृत हुए। कहा जाता है कि देवताओं और महापुरुषों के पास अलौकिक शक्तियाँ होती हैं, उनके लिए समय, दिशा, युग और स्थान का कोई महत्त्व नहीं होता। देवता किसी भी समय, किसी भी स्थान, किसी भी काल में उपस्थित हो सकते हैं, लेकिन क्या मनुष्य के लिए प्रत्येक युग में रहना सम्भव है? कहते हैं मानव शरीर नश्वर होता है, लेकिन क्या इस नश्वर शरीर के बावजूद वह मृत्यु को जीतकर हर युग में उपस्थित रह सकता है?

हठयोग के प्रवर्तक गुरु श्रीगोरक्षनाथ के विषय में ऐसा ही कहा जाता है कि मुनष्य स्वरूप (काया) में अवतरित होने के बावजूद उन्होंने चारों युगों में अपनी उपस्थिति और प्रतिष्ठा स्थापित की थी। नाथ परम्परा को पूर्ण व्यवस्थित और विस्तारित करने वाले गुरु श्रीगोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य और स्वयं शिव के अवतार थे।

महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ के आविर्भाव और अवतार को लेकर स्वाभाविक मतान्तर हैं। विभिन्न परम्पराओं, अनुश्रुतियों, मान्यताओं और देश-विदेश के अनेक साहित्यों और साहित्यकारों एवं कथाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गुरु श्रीगोरक्षनाथ एक अवतारी महापुरुष थे। यह अवधारणा अनेक स्रोतों से स्पष्ट है। एक अनुश्रुति से यह पता चलता है कि एक बार गुरु श्रीगोरक्षनाथ समाधि में लीन थे, जिसे देखकर माँ पार्वती ने भगवान् शिव से उनके बारे में पूछा, तो भगवान् शिव बोले-'मानव समाज को योग शिक्षा देने के लिए मैंने ही गोरखनाथ के रूप में अवतार लिया है।' इसलिए श्रीगोरक्षनाथ को शिवावतारी कहा जाता है। इसी प्रकार 'श्री वल्लभदिग्विजय' ग्रन्थ में उल्लिखित है कि महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ सब समय यथास्थान सिद्धदेह में प्रकट होते रहे हैं, वे अमरकाय और अकाल हैं। कौलावली तंत्र, श्यामरहस्य, सुधाकर चन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थों में भी गुरु श्रीगोरक्षनाथ को ईश्वर का अवतार कहा गया है। ऐसे ही गुरु श्रीगोरक्षनाथ जी की उत्पत्ति की एक कथा फैजुल्लारचित 'गोरखविजय' जैसे बँगला काव्य में उल्लिखित है कि शिव की नाभि से मत्स्येन्द्रनाथ, हाड़ से हाड़िया, कान से कानपा (कनिपा) और जटा (ललाट) से गुरु श्रीगोरक्षनाथ की उत्पत्ति हुई है।

गुरु श्रीगोरक्षनाथ जी के आविर्भाव के सम्बन्ध में एक विवरण से पता चलता है कि जब भगवान् विष्णु कमल में प्रकट हुए, तब गुरु श्रीगोरक्षनाथ पाताल में तपस्या कर रहे थे। भगवान् विष्णु चारों ओर जल की समस्या से चिंतित होकर गुरु श्रीगोरक्षनाथ

जी के पास सहायता के लिए गये, गुरु श्रीगोरक्षनाथ ने उन्हें धूनी से विभूति (भभूति) दी, जिससे पृथ्वी की रचना हुई और सृष्टि का कार्य सुगम हो सका। 'कल्पद्रुमतन्त्रान्तर्गत गोरक्षस्तोत्रराज' में योगेश्वर भगवान् कृष्ण ने महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ को प्रणाम करते हुए उनकी महिमा ज्ञापित की है कि ''हे गोरखनाथ! आप निरंजन, निराकार, निर्विकल्प, निर्भय, अगोचर हैं। आप हठयोग के प्रवर्तक शिव हैं, आप सिद्धों में महा सिद्ध हैं, ऋषियों में ऋषीश्वर हैं, योगियों में योगीन्द्र हैं।'' इस प्रकार अनेक विशेषणों से गुरु श्रीगोरक्षनाथ जी का महिमा मण्डन किया गया है।

मान्यताओं और भारतीय एवं विदेशी विद्वानों के उद्धरणों, जिनमें प्रमुख रूप से जॉर्ज ग्रियर्सन और ब्रिग्स इत्यादि की मान्यता है कि गुरु श्रीगोरक्षनाथ का आविर्भाव सभी युगों में रहा है, तदनुसार सतयुग में गुरु श्रीगोरक्षनाथ ने पंजाब में तपस्या की, त्रेतायुग में उन्होंने उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में रहकर साधना की। यह भूमि गुरु श्रीगोरक्षनाथ की योग साधना, तपस्या की रही है।

उनकी प्रतिष्ठा इसी से स्पष्ट है कि उन्हें भगवान् श्रीराम के राज्याभिषेक के लिए निमंत्रण भेजा गया था, लेकिन तपस्या में लीन होने के कारण स्वयं उपस्थित नहीं हो सके, परन्तु उन्होंने अपना आशीर्वाद भेजा था। यह भी उल्लेख मिला है कि भगवान् श्रीराम ने उनसे योग सम्बन्धी उपदेश ग्रहण किया था। द्वापर युग में द्वारिका (हरमुज) में अवतरित हुए, जो गुरु श्रीगोरक्षनाथ की तपोस्थली रही है। इसी स्थान पर रुक्मिणी और भगवान् कृष्ण के विवाह में उत्पन्न हो रहे विघ्न को दूर करने के लिए देवताओं के आग्रह पर गुरु श्रीगोरक्षनाथ ने उपस्थित होकर विवाह सकुशल सम्पन्न करवाया था। इसी युग से सम्बन्धित एक उल्लेख यह भी मिलता है कि जब धर्मराज महाराज युधिष्ठिर द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ में महाबली भीम गुरु श्रीगोरक्षनाथ जी को आमंत्रित करने उनकी तपोभूमि गोरखपुर आये तो उस समय भी वे तपस्या में लीन थे। उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी। जहाँ पर महाबली भीम ने विश्राम किया, वहाँ सरोवर बन गया, जो आज भी श्रीगोरखनाथ मन्दिर के भव्य प्रांगण में अवस्थित है। इसी प्रकार कलियुग में सौराष्ट्र के काठियावाड़ जिले में गोरखमढ़ी गुरु श्रीगोरक्षनाथ का अवतार माना जाता है।

एक अन्य मान्यतानुसार गुरु श्री गोरक्षनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ हनुमान जी की आज्ञानुसार त्रियाराज्य (वर्तमान में चीन के समीप) में गृहस्थ आश्रम का जीवन व्यतीत कर रहे थे। जब इस विषय में गुरु श्रीगोरक्षनाथ को पता लगा, वे त्रियाराज्य की ओर प्रस्थान किये। हनुमान जी ने गुरु श्रीगोरक्षनाथ का मार्ग रोक लिया। दोनों में

युद्ध हुआ। हनुमान जी गुरु श्रीगोरक्षनाथ को पराजित नहीं कर पाये, तब हनुमान जी ने अपने असली रूप में प्रकट होकर वरदान दिया और मत्स्येन्द्र नाथ आज्ञामुक्त हुए। इसी स्थान पर हनुमान जी ने प्रहरी बनकर रहने का वचन दिया। इसी स्थान को सिद्धबली बाबा या कौमुद द्वार भी कहा जाता है।

गुरु श्रीगोरक्षनाथ के विषय में कुछ और उद्धरण मिलते हैं, जिनसे उनकी अलौकिक क्षमता और सिद्ध पुरुष होने की प्रामाणिकता स्पष्ट होती है। कहा जाता है कि राजकुमार बप्पा रावल जब किशोरावस्था में अपने साथियों के साथ राजस्थान के जंगलों में शिकार के लिए गए थे, उस समय गुरु श्रीगोरक्षनाथ ध्यान में लीन थे। बप्पा रावल, वहीं रहकर गुरु श्रीगोरक्षनाथ की सेवा करना प्रारम्भ कर दिए। जब गुरु श्रीगोरक्षनाथ ध्यान से जागे तब प्रसन्न होकर उन्होंने बप्पा रावल को एक दिव्य तलवार दी, जिसके बल पर चित्तौड़ राज्य की स्थापना हुई। इसी प्रकार राजस्थान के महापुरुष गोगाजी का जन्म गुरु श्रीगोरक्षनाथ के द्वारा दिये गये प्रसाद गुगल नामक फल के खाने से हुआ, जिन्होंने आगे चल कर राजस्थान में बहुत प्रतिष्ठा अर्जित की। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गुरु श्रीगोरक्षनाथ सभी युगों में उपस्थित रहे हैं। उनके काल खण्ड को लेकर विद्वानों में मत विभिन्नता दिखलाई पड़ती है। विद्वानों ने अपने-अपने स्रोतों से उनके आविर्भाव काल को निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। ब्रिग्स गुरु श्रीगोरक्षनाथ का समय ११वीं ई. शती से पूर्व मानते हैं। मेवाड़ के महापुरुष बप्पा रावल से सम्बन्धित गोरक्ष का समय ८वीं ई. शती से १२वीं ई. शती के मध्य माना जाता है। नेपाली वंशावली पर्वतिया के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ और गुरु श्रीगोरक्षनाथ का मिलन नेपाल में नरदेव के समय ८वीं शती के मध्यकाल में हुआ था। डॉ. मोहन सिंह ने सम्भावना व्यक्त की है कि गुरु श्रीगोरक्षनाथ जी ९वीं शती में विद्यमान रहे हैं। प्रो. सिल्वा लेबी, डॉ. शहीदुल्ला जैसे विद्वानों के अनुसार नाथपन्थ के संस्थापक सातवीं शताब्दी में अवश्य विद्यमान थे। कुछ विद्वान् भर्तृहरि से सम्बन्ध के आधार पर गुरु श्रीगोरक्षनाथ को छठीं शताब्दी का मानते हैं। एक परम्परा के अनुसार जीसस क्राइस्ट ने हिमालय में नाथ योगी गुरु श्री गोरक्षनाथ से योग शिक्षा ग्रहण की थी।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ और जालंधरनाथ समसामयिक थे और दोनों के शिष्य क्रमशः गुरु श्री गोरक्षनाथ एवं कानुपा (कृष्णपाद) थे। इस आधार पर इनका आविर्भाव ९वीं ई. शती माना जाना चाहिए। डॉ. कल्याणी मल्लिक ने गुरु श्री गोरक्षनाथ का समय १०वीं ई. शती के पूर्व माना है। इसी प्रकार कश्मीरी आचार्य अभिनव गुप्त ने गुरु श्री गोरक्षनाथ का आविर्भाव काल दसवीं शताब्दी के

अन्त और ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में माना है। राहुल सांकृत्यायन ने विभिन्न विवरणों के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि मत्स्येन्द्रनाथ ९वीं शताब्दी के मध्य या अंत भाग तक वर्तमान थे, अतः गुरु श्रीगोरक्षनाथ जी का भी आविर्भाव काल यही माना जाना चाहिए। चालुक्य राजा मूलराज से भी गुरु श्रीगोरक्षनाथ के सम्बन्धों का उल्लेख मिलता है। मूलराज ने राज्यभार संवत् ९९३ आषाढ़ी पूर्णिमा को ग्रहण किया था। विवरण यह भी मिलता है कि महाकवि कबीर और गुरुनानक जी के साथ भी गुरु श्रीगोरक्षनाथ जी का संवाद हुआ था। इस आधार पर १४वीं शताब्दी के आस-पास गुरु श्रीगोरक्षनाथ जी का आविर्भाव काल माना जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवरणों और उल्लेखों के आधार पर गुरु श्रीगोरक्षनाथ जी का एक निश्चित आविर्भाव काल सम्भव नहीं है। कारण भी है, क्योंकि गुरु श्रीगोरक्षनाथ जी की उपस्थिति सार्वकालिक एवं सर्वव्यापक मानी जाती है। वैसे भी ऐसे महापुरुष, दिव्य पुरुष प्रकृति को वशीभूत कर प्राकृतिक नियमों को अपने वश में कर लेते हैं। किसी भी रूप में कहीं भी उत्पन्न हो जाते हैं। वैसे भी गुरु श्री गोरक्षनाथ अवतारी महापुरुष हैं, इसलिए प्रारम्भ में ही कहा गया है कि उनकी उत्पत्ति को लेकर मतान्तर स्वाभाविक है, वे सार्वकालिक हैं, सर्वत्र व्याप्त हैं। उनकी महिमा और आशीर्वाद सभी युगों में समाज को मिलता रहा है।

■

महाराष्ट्र की उत्तरवर्ती नाथ परम्परा

*डॉ० दिवाकर पाण्डेय

उत्तरवर्ती काल में नाथमत अपने मूल रूप में महाराष्ट्र में अधिक सशक्त एवं विकासशील रहा । ११ वीं श० से पूर्व ही वहाँ नाथ पंथ का प्रचार हो चुका था। महाराष्ट्र की नाथपरम्परा गहिनीनाथ और अमरनाथ से आरम्भ होती है। नाथपंथी हठयोग साधना में कृष्णभक्ति-धारा का समावेश हो जाने से नाथपंथ महाराष्ट्र में और भी लोकप्रिय हो चला। महाराष्ट्र में बारकरी सम्प्रदाय से पूर्व महानुभाव पंथ का प्रचलन था । महानुभाव पंथ के प्रवर्त्तक चक्रधर स्वामी (सन् ११९४,१२७४ ई०) गुजरात के राजा विशालदेव के पुत्र थे। चक्रधर स्वामी के गुरु गुंडभराउक और परात्पर गुरु चांगदेव राउक-दोनों नाथपंथी सिद्ध थे । चक्रधर स्वामी स्वयं मूलतः नाथपंथी थे । उनकी गुरु परम्परा 'आदिनाथ' से बतायी गयी है। यद्यपि चक्रधर स्वामी द्वारा संस्थापित महानुभाव पथ नाथपंथ के घोर विरोध में खड़ा हुआ था । पर उसके प्रवर्त्तनकाल में ही चक्रधर को कहना पड़ा था 'हे नाथ वाणी हे सीध वाणी । नाथवाणी ते नींकी ।।' चक्रधर स्वामी के जीवन-चरित्र परक ग्रन्थ 'लीला-चरित्र' में गोरख, जालंधर आदि अनेक नाथ सिद्धों का उल्लेख हुआ है। नाथ सिद्धों की बानियों के भी दर्शन उसमें होते हैं। महानुभावीय हिन्दी चौपदियों में यौगिक-शब्दावली-मन-पवन, चंद्र-सूर्य, उड्डीयान उन्मनी, अलखनिरंजन आदि का उसी अर्थ में व्यवहार किया गया है जिनका ग्रहण नाथपंथ में हुआ है। महाराष्ट्र में हरिनाथ (सन् ११५९-८६) के शिष्य मुकुन्दराम मराठी के आद्यकवि माने जाते हैं। उन्होंने अपने काव्य- ग्रन्थ ''विवेकसिन्धु में स्वयं को नाथपंथी स्वीकार किया है। मुकुन्दराज की गुरु शिष्य परम्परां इस प्रकार बतायी गयी है''-

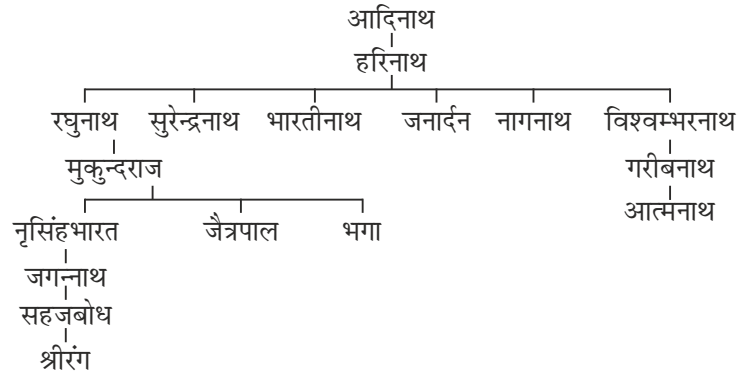

महाराष्ट्र का वारकरी सम्प्रदाय डा० कामत के शब्दों में ''वास्तव में कोई नया पंथ नहीं है। वह तो गुरु गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथमत का जनसुलभ सुन्दर विकास है।'' वारकरी सम्प्रदाय को व्यापक प्रतिष्ठा संत ज्ञानेश्वर एवं नामदेव ने प्रदान की। संत ज्ञानेश्वर नाथपंथी सिद्ध थे। नामदेव भी न केवल गुरु परम्परा से ही नाथपंथी थे अपितु उनके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक स्तर का उपजीव्य नाथ-पंथीय विचारधारा ही रही। इन संतों ने विष्णु और शिव की एकता स्थापित कर तत्कालीन सम्प्रदायों की कलुष भावना को धोने का प्रयत्न किया । विठ्ठल-प्रतिमा के मस्तक पर स्थापित शिवलिंग जहाँ उनके शिवत्व का बोध कराता है वहीं उनके हाथों में धारणा किया हुआ चक्र और पद्म उनके विष्णुत्व की भी घोषणा करता है। बारकरी संत विठ्ठल को अपना आराध्य मानते हुए भी अद्वैतवादी हैं। महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष में बारकरी संतों की जो सूची दी गयी है वह इस प्रकार है- निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपान-देव, मुक्ताबाई, विसोवासेचर, नामदेव, गोराकुंमार, सावतामाली. नरहरि सुनार, चोखामेला, जगमित्र नागा, कूर्म दास, जनाबाई, चांगदेव, भानुदास, एकनाथ, राघवचैतन्य, केशव चैतन्य, तुकाराम वुवा, तिलोबाराय, बोघले वुवा, शंकर-स्वामी भल्लापा, मुकुन्दराज, कान्होपात्रा, जोगा परमानन्द । संत ज्ञानेश्वर के पश्चात् भी नाथ-परम्परा राशिन और और पैठण में चलती रही- आदिनाथ-मछेन्द्रनाथ-गोरक्षनाथ-गैनीनाथ-निवृत्तिनाथ-ज्ञाननाथ-सत्यामलनाथ-गैबीनाथ-गुप्तनाथ उद्बोधनाथ-केशरीनाथ शिवदिननाथ-नरहरि-महीपति ।

संत नामदेव हठयोगी सिद्ध विसोबाखेचर के शिष्य थे। विसोबाखेचर की गुरुपरम्परा गोरक्षनाथ से सम्बद्ध बतायी जाती है- आदिनाथ>मत्स्येन्द्रनाथ>गोरक्षनाथ>मुक्ताबाई, चाँगाबटेश्वर>कृष्णनाथ>विसोबाखेचर>नामदेव। विसोबाखेचर का मराठी ग्रंथ 'षटस्थल' संत नामदेव की नाथपंथ से सम्बद्धता पर प्रकाश डालता है। नामदेव अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में सगुणोपासक रहे पर विसोबाखेचर से ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् निर्गुणवादी बने। आचार्य शुक्ल ने इन्हें निर्गुण-पंथ के लिए मार्ग निकालने वाला नाथपंथ का योगी और भक्त कहा है। नामदेव की हिन्दी पदावली की अनेक रचनाएँ 'गोरखबानी' में संग्रहीत रचनाओं से मिलती-जुलती हैं। कहीं-कहीं दोनों में अद्भुत समानता भी पायी जाती है। डा० कामत के शब्दों में- ''गोरक्षनाथ के नाथपंथीय दर्शन की समस्त विशेषताएँ हमें सन्त नामदेव की हिन्दी वाणी में दिखाई देती हैं। डा० रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में, ''संत नामदेव के अन्य पदों में निरंजन का ध्यान करने, अजपाजाप जपने, ज्योतिरूप परमतत्त्व के झिलमिल-झिलमिल नूर का

दर्शन करने तथा अन्तर्मुखी साधना के बल पर मन को निश्चल करके कोटि सूर्यों के प्रकाश रूप ज्योति, पुंज को प्रत्यक्ष देखने की बात कही गयी है। यह सभी बातें नाथ योग सम्मत हैं।'' संत नामदेव के एक ही पद में मन-पवन की दृढ़ता, अनाहत ध्वनि-श्रवण की तल्लीनता, चंद्र सूर्य के समरसी कारण एवं सहजावस्था की प्राप्ति हेतु निर्देश दिये गये हैं-

देवा बेनु बाजे गगन गाजै। सबद अनाहद बोलै।
अंबर की गति जानै नाही। मूरिष भरमत डोले॥
चंद सूर दोउ समकरि राखूं। मनपवन दिठ डाँडी।
सहजै सुषमन तारामंडल। इह विधि त्रिस्तां पाड़ी॥
गगन मंडल में रहनि हमारी। सहज सुनि गृहमेला।
अंतरि धुनि में मन विलमाऊँ। कोई जोगीया गम लहैला॥

(नामदेव की पदावली - पद ६५)

वामाचारी बौद्धों एवं औघड़पंथी सिद्धों की कठोर साधना के विरोध में सहज-साधना का सुगम मार्ग प्रशस्त करने वाले गोरक्ष के अनुगामी संत नामदेव हठयोग को साधना का एक सोपान समझते हैं। सहज समाधि ही उनका परम ध्येय है। इस सहज समाधि में रमकर ही योगी साधक अमृत-पान कर समस्त द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है। कथनी की अपेक्षा करनी पर वल, बाह्याचार का निषेध, गुरु का महत्त्व, मूर्ति-पूजा का विरोध गोरक्षनाथ और नामदेव की वाणियों में समान रूप से स्वीकार किया गया है। नाथ योगियों ने जिस परमतत्त्व को नाथ-त्तत्त्व कहकर उसे अपने चिन्तन का विषय बनाया था उसे ही नामदेव ने विठ्ठल के रूप में देखा। वस्तुतः वारकरी संतों ने एक तरफ अद्वैत की सत्ता को स्वीकार किया तो दूसरी ओर राम, गोपाल, हरि, विठ्ठल, माधव, गोविन्द का तन्मय होकर गुणगान भी किया। ये सभी नाम उनके लिए एक ही तत्त्व के बोधक रहे। वह तत्त्व शिव-विष्णु से परे था। इन संतों ने एक ऐसी साधना-पद्धति को स्वीकार किया जिसका साधक के वैयक्तिक जीवन के उत्कर्ष के साथ गहरा सम्बन्ध था। शून्य, कायातीर्थ, समाधि और योग इस वैयक्तिक साधना के चार अंग थे। यौगिक आख्याओं को स्वीकार कर संतों ने सिद्धावस्था में पहुँचने का प्रयास किया तथा हठयोग जैसी कठिन तांत्रिक पद्धति को भी सीमित समर्थन दिया । सामान्य जन तथा साधक जन-दोनों की सुविधा का ध्यान इन संतों ने दक्षिण में उत्पन्न आलवारों के भक्ति आन्दोलन से समझौता कर जाति-वर्ग आदि के द्वेष को

सर्वदा के लिए मिटा देने का प्रयास किया। शैव-वैष्णव का यह समझौता विठ्ठल सम्प्रदाय के रूप में हुआ, जिसके सबसे बड़े संत नामदेव हुए। डा० कामत के शब्दों में- 'नाथपंथ की पृष्ठभूमि पर भक्ति पद्धति को आकार देना अपने पूर्व संस्कारों के कारण नामदेव के लिये सहज स्वाभाविक कार्य था। ईश्वर-भक्ति के लिए संत नाम देव ने मन की पवित्रता और आचरण की शुद्धता पर जोर दिया। महाराष्ट्र में विठ्ठल का प्रभाव अपरिहार्य था जिससे कबीर भी अछूते न रह सके। नामदेव के जीवन-चरित्र में अनेक चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। उन्होंने नाथ योगियों की वाणियों से प्रेरणा ग्रहण कर उनके महान विचारों को जन-जागृति का विषय बनाया। अब हम नामदेवोत्तर कुछ प्रमुख नाथपंथीय कवियों के सम्बन्ध में संक्षेप में निवेदन करना चाहेंगे ।

■

संतों की साधना-पद्धति कबीर के संदर्भ में

*ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना, नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्था ॥

महाभारत, वनपर्व ३/१२/३१५

श्रुतियाँ और स्मृतियाँ अनेक हैं। इनमें व्यक्त विचार एक जैसे नहीं हैं। ऋषि-मुनि भी एक नहीं हुए हैं। उनके विचारों में भी पूर्ण एकता का अभाव है। अतः पूर्वकालिक सभी ऋषि-मुनियों के सभी विचारों को यथारूप प्रमाणस्वरूप नहीं माना जा सकता। वस्तुतः इसीलिए धर्म का तत्त्व अति गूढ़ है। जिज्ञासु को उपादेय है कि वह उस मार्ग का अनुसरण करे जिस पर चलकर महाजनों ने धर्म रूप परमतत्त्व का अपरोक्षानुभव किया है।

यहाँ प्रश्न होता है कि महाजन अथवा महापुरुष कौन है जिसके आचरणों और विचारों को आदर्श मानकर परमतत्त्व का साक्षात्कार किया जा सके। साथ ही ऐसे महापुरुष से उस परमतत्त्व को जानने की शास्त्रबद्ध रीति कौनसी है।

पहले प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भागवपुराण इस प्रकार देता है-

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥

श्रीमद्भागवद् ११/३/२१

संसार में दो मार्ग हैं। एक श्रेय व दूसरा प्रेय। श्रेय का तात्पर्य निःश्रेयस-जीवन्मुक्ति से है। प्रेय का तात्पर्य रागात्मक जीवन जीते हुए सांसारिक भोगैश्वर्यों में आकण्ठ डूबे रहने से है। जिस आत्मजिज्ञासु को श्रेय की आकांक्षा हो उसको गुरु की शरणावलम्बन करनी चाहिए। उत्तम श्रेयाकांक्षी आत्मजिज्ञासु चलते-फिरते कनफूंके गुरु का आश्रय न लेकर ऐसे गुरु का अवलम्बन ले जो शाब्देवेदांतादि और परेपरब्रह्म-परमात्मा के अपरोक्षावबोध में परमनिष्णात् व सम्पन्न हो। ऐसा गुरु ही वेदांतज्ञान, जिसको परोक्षज्ञान भी कहा जाता है, के द्वारा जिज्ञासु के समस्त भ्रमों और संशयों का उच्छेद करने में समर्थ हो पाता है। परमात्मा परोक्षज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। उसको प्राप्त करने के लिये साधना करनी जरूरी है। साधना में अनेक विघ्नों का आना स्वाभाविक होता है। जो गुरु साधना करके परब्रह्म-परमात्मा का अपरोक्षानुभव कर चुका हो, वही जिज्ञासु को साधना-काल में आने वाले विघ्नों से

निजात दिला सकता है। अतः गुरु के पास अपरोक्षज्ञान का होना भी अत्यन्त आवश्यक है।

ऊपर प्रेय एवं श्रेय की चर्चा आई है। प्रेय और श्रेय को कठोपनिषद् में इस प्रकार परिभाषित किया गया है–

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीत॥

कठोपनिषद् १/२/२

श्रेय और प्रेय, ये दोनों ही मनुष्य के सामने आते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य तो उन दोनों के स्वरूप पर भलीभाँति विचार करके उनको पृथक्–पृथक् समझ लेता है और वह श्रेष्ठ–बुद्धि मनुष्य श्रेयो हिपरमकल्याण के साधन को ही प्रेयसः भोगसाधन की अपेक्षा श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है परन्तु मन्दबुद्धि वाला मनुष्य लौकिक योगक्षेम की इच्छा से प्रेयः वृणीतेभोगों के साधन रूप प्रेय को अपनाता है।

ऊपर एक बात और कही गई है कि परब्रह्म–परमात्मा परोक्ष–ज्ञान अर्थात् शास्त्रीय–ज्ञान से नहीं मिलता। वह उसी को मिलता है जिस पर गुरुमहाराज के माध्यम से परब्रह्म–परमात्मा स्वयं कृपा करता है। गुरु कृपा करके जिज्ञासु को साधना में प्रवृत्त कराता है और जिज्ञासु को परमात्मा का अपरोक्षावबोध प्राप्त कराता है। इसी बात को कठोपनिषद् कितनी ही स्पष्टता से वर्णन करता है–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेघया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम् ॥

कठोपनिषद् १/२/२३ व मुण्डकोपनिषद् ३/२/३

परब्रह्म–परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से, और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है। वस्तुतः यह जिसको स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा ही यह प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि यह परमात्मा उसके लिये अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देता है।

यहाँ तक एक प्रश्न, गुरु के लक्षण की चर्चा की गई है। दूसरे प्रश्न का उत्तर हमें भगवान् श्रीकृष्ण गीता में इस प्रकार देते हैं–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

– श्रीमद्भगवद्गीता ४/३४

तत्त्वदर्शी ज्ञानी उस ज्ञान का उपदेश तब देते हैं जब आत्मजिज्ञासु उनके समक्ष विनीत भावापन्न होकर प्रश्न रूप जिज्ञासा करे। ज्ञानी अपनी ओर से बिना पूछे–ताछे ज्ञान का

प्रवचन नहीं करते। जो बड़ी-बड़ी सभाओं में हजारों-लाखों की भीड़ में भाषण-प्रवचन करते हैं, उनका लक्ष्य आत्मकल्याण न होकर धनार्जन करना होता है। वे कभी भी आत्मज्ञानी अभिधान से अभिहित नहीं हो सकते। ऐसे उपदेशक वाचकज्ञानी हैं, शास्त्रज्ञानी हैं; आत्मज्ञानी नहीं।

स्वामी रामचरण ने अत्यन्त स्पष्टता से कहा है

बूझ्याँ सूँ चरचा करै, छांड्या वाद विवाद।
रामचरण ये लछ लियाँ, रामसनेही साध॥

नारदभक्तिसूत्र में भी वाद-विवाद का निषेध किया गया है। वाद-विवाद करने से बुद्धि पांडित्य बघारने के चक्र में उलझ जाती है। साधना उससे छूट जाती है।

''वादोनावलम्ब्य'' नारदद्भक्तिसूत्र १४

यहाँ यह बताना प्रासंगिक है कि चिश्तिया सिलसिले के भारतीय चौथे क्रमांक के प्रधान औलिया निजामुद्दीन जब तक अपने मुर्शिद गंज-ए-शकर बाबा शेख फरीदुद्दीन मसऊद से दीक्षित नहीं हुए थे तब तक वे शास्त्रार्थी महापंडित के नाम से प्रसिद्धि पा चुके थे। वे अच्छे-अच्छे मौलानाओं, आमीलों की बोलती बंद कर दिया करते थे किंतु जबसे वे बाबा फरीद से वैयतदीक्षित हुए, मुर्शिद के संकेतानुसार उन्होंने वाद-विवाद को साधना का विघ्न समझकर सदा-सर्वदा के लिये त्याग दिया।

प्रारम्भ में हमने लिखा है कि आत्मजिज्ञासु को उस पथ का अनुसरण करना चाहिये जिस पर चलकर उसको आत्मा का, परमात्मा का अपरोक्षानुभव हो सके। वस्तुतः परब्रह्म-परमात्मा स्वानुभूति का ही विषय है। यह स्वानुभूति जिस मार्ग से, तरीके से, पद्धति से, मार्ग से हो सकती है, वही 'साधना' कही जाती है। जिसने परमात्मा को जिस रास्ते से, रीति से, पद्धति से, विधि से प्राप्त किया, उसने उसी को श्रेष्ठतम स्वीकार करके अन्य साधनाओं को अनुपादेय बताया है। श्रीमद्भगवद्गीता दो निष्ठाओं की चर्चा करती है-

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

- श्रीमद्भगवद्गीता ३/३

हे अनघनिष्पाप अर्जुन! इस लोक में मेरे द्वारा पुराकाल में दो निष्ठाओं का प्रकाशन हुआ है। सांख्ययोगियों के लिये ज्ञानमार्ग जबकि कर्मयोगियों को कर्ममार्ग का उपदेश मेरे द्वारा हुआ है। श्रीमद्भागवद् में इससे भिन्न बात कही गई है-

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

भक्त्याहमेकयाऽग्राह्याः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपिसम्भवात् ॥

श्रीमद्भागवद् १०/१४/२०-२१

श्रीकृष्ण कहते हैं, जिस प्रकार मेरी दृढ़ भक्ति मुझे वश में करती है उस प्रकार मुझको योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप और त्याग वश में नहीं कर सकते। संतों का प्रिय आत्मा रूप में केवल श्रद्धायुक्त भक्ति के द्वारा वश में हो सकता हूँ, मेरी भक्ति चाण्डाल आदि को भी पवित्र हृदय बनाने में समर्थ है।

दार्शनिक-मुकुटमणि आद्य शंकराचार्य के मत में साधना का प्रकार निम्न प्रकार गृहीत होता है-

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा॥
अज्ञानसर्पदष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं विना।
किमु वेदैश्च शास्त्रैश्च किमु मंत्रैः किमौषधैः॥

विवेकचूड़ामणि ५८, ६३

मोक्ष न योग से सिद्ध होता है और न सांख्य से; न कर्म से और न विद्या से। वह केवल ब्रह्मात्मैक्यबोध (ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध, इसी का नाम ज्ञान है तथा इसके अतिरिक्त सभी कुछ अज्ञान है, केवलाद्वैत वेदान्तानुसार संसार और संसार का कारण अविद्या-दोनों ही अज्ञान हैं। संक्षेप में द्वैत ही अज्ञान और अद्वैत ही ज्ञान है) से ही होता है और किसी प्रकार नहीं।।५८।। अज्ञान रूपी सर्प से डसे हुए को ब्रह्मज्ञान रूपी औषधि के बिना वेद से, शास्त्र से, मंत्र से, और औषधि से क्या लाभ? ।।६३।।

मध्यकालीन भक्तिशास्त्र के आचार्य रूप गोस्वामी ऐसी भक्ति को परमात्म-प्राप्ति का साधन मानते हैं जो ज्ञान और कर्म दोनों से व्यावृत्त न होती हो। अर्थात् उनके मत में भक्ति रूपी साधन ही परमात्म-प्राप्ति का साक्षात् साधन है। उसको अन्य किसी भी साधन की अपेक्षा नहीं है।

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशील्यं भक्तिरुत्तमा ॥

भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्वलहरी

भक्ति को न ज्ञान का सहकार चाहिए और न कर्म का सहकार चाहिए। वह भक्ति भगवत्प्राप्ति का स्वतंत्र साधन है-

रामचरितमानसकार गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी मत का समर्थन किया है।

जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भगति सयानी ॥
सो स्वतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥

इसी मत का समर्थन श्रीमद्भवद्गीता से भी होता दीखता है-

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परतंप।।

श्रीमद्भगवद्गीता ११/५३-५४

हे अर्जुन ! जैसा तुमने मुझको देखा है, वैसा वेद, तप, दान, यज्ञ आदि से मैं देखने में नहीं आता। हे परन्तप ! हे अर्जुन! अनन्यभक्ति के द्वारा ही इस प्रकार मेरा देखा जाना मुझे तत्त्व से जानना और मुझमें प्रवेश पाना संभव है।

भक्तिशास्त्राचार्य महर्षि शांडिल्य ने भी भक्ति को ही मुख्य अथवा अंगी मानकर अन्यों को इसका अंग माना है।

सा मुख्येतरापेक्षितत्त्वात् ।।१०।।

भक्ति ही मुख्य है क्योंकि अन्य साधनों में भक्ति की सहायता लेनी ही पड़ती है। रूप गोस्वामी, तुलसीदास व गीता भक्ति को मुक्ति का स्वतंत्र साधन मानते हैं। वे अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं रखते जबकि महर्षि शांडिल्य अन्य साधनों से भगवत्प्राप्ति मानकर भक्ति को प्रधान बताते हैं।

इस विचार को वेदान्त-ग्रंथों में दो प्रकार से परिभाषित किया गया है। पहला प्रकार सम-समुच्चयवाद कहलाता है जबकि दूसरा क्रम-समुच्चयवाद कहलाता है। सम-समुच्चयवाद का तात्पर्य है, भगवत्प्राप्ति के कई साधन हैं और उनमें परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। उनका साधन एक साथ किया जाता है। वे एक दूसरे के पूरक हैं। उदाहरणार्थ, परमात्मा है। जीव का परमकर्त्तव्य है कि वह परमात्मा को पाने का प्रयत्न करे। यह ज्ञान उसे गुरु से, संतों से, शास्त्रों से मिलता है। एक बार सुना अथवा पढ़ा हुआ ज्ञान दृढ़ नहीं रहता। अतः इस ज्ञान को बार-बार सुनना अथवा पढ़ना पड़ता है तब ही चित्तवृत्ति साधना में तल्लीन रह पाती है। सत्संग में जाना, शास्त्रों को पढ़ना, गुरु-ज्ञान सुनने जाना, उनकी तन, मन, धन से सेवा करना कर्म है। सत्संग में सुने, शास्त्र से पढ़े ज्ञानानुसार भगवन्नामजप करना, मनन करना, ध्यान करना, समाधि लगाना भक्ति है। इस प्रकार इसमें तीन निष्ठाओं का एक साथ सम्पादन हो रहा है। आसनादि लगाकर बैठना योगनिष्ठा को भी सम्मिलित कर लेता

है। यही सम-समुच्चयवाद है।

आद्यशंकराचार्य ने इस सम-समुच्चयवाद को नहीं माना। उनका कहना है कि अनेक निष्ठाओं का एक साथ सम्पादन होना कलिकाल के अल्पजीवी धीरजविहीन साधकों द्वारा संभव नहीं है। अत: क्रम-समुच्चयवाद ही विधेय किम्वा आचरणीय है।

क्रम-समुच्चयवाद में निष्काम-कर्मनिष्ठा के सम्पादन से सर्वप्रथम जागतिक भोगों से उपरामता सम्पादित करनी चाहिए। यदि साधक सांसारिक भोगविलासों और परब्रह्म-परमात्मा दोनों से रागात्मक सम्बन्ध रखते हुए साधना करेगा तो उसका पतन होना अवश्यम्भावी है। अत: साधक को सर्वप्रथम विवेक और वैराग्य का आश्रय लेकर सांसारिकता से उपरामता सम्पादित करनी चाहिए।

इसके पश्चात् भक्ति के द्वारा यत्र-तत्र बिखरी पड़ी चित्तवृत्तियों को नियंत्रित कर एक लक्ष्य रूप परब्रह्म-परमात्मा में अचल करनी चाहिए। इस भक्ति के द्वारा चित्त का शोधन हो जाता है। उसका प्रवाह अनेक ओर बहने के स्थान पर एक ओर प्रवाहित होने लगता है। यह धारणा, ध्यान व समाधि के द्वारा संभव है। ये तीनों ही भक्ति के अंग हैं। स्वत: ही जब उसकी चित्त-वृत्ति का शोधन हो जाता है तब 'अहं ब्रह्माऽस्मि', 'तत्त्वमसि', प्रज्ञानं ब्रह्म:' और 'अयमात्मा ब्रह्म:' का अनुभव करने लगती है। उसकी चित्तवृत्ति स्वात्मतत्त्व-चिंतन तथा स्वात्मा में ही रमण करने लगती है। उसका स्वरूप स्वात्माराम हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता ने भी क्रम-समुच्चयवाद का ही समर्थन किया है-

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

- श्रीमद्भगवद्गीता १०/१०

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदि में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्त्वज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तम:।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

- श्रीमद्भगवद्गीता १०/११

उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिये उनके अन्त: करण में स्थित हुआ में स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अंधकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञान रूप दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूँ। हठयोग में प्राणवायु के नियंत्रण, शोधन की प्रधानता है। राजयोग में अष्टांगयोग का प्राधान्य है। लययोग में चित्तवृत्ति को शब्द रूप परब्रह्म-परमात्मा में लय करने का प्राधान्य है। सुरति-शब्द योग में चित्तवृत्ति रूप सुरति का शब्द स्वरूपी

परब्रह्म-परमात्मा से एकाकार करना अभीष्ट होता है। कर्मयोग में नाना यज्ञादि को सम्पन्न करके स्वर्गादि प्राप्त करना काम्य होता है। शरणागतियोग में सर्वात्मभावेन इष्ट के समक्ष समर्पण करना अपेक्षित होता है। यह षड्विधा कहा गया है। आळवारों ने इसको मार्जारसुतीय-शरणागतियोग तथा कपिसुतीय-शरणागतियोग नाम देकर द्विविध कहकर फिर इसको षड्विध कहा है। प्रेमयोग को दशधाभक्ति कहा गया है। भागवत् नवधाभक्ति का विधान करता है। संतों ने पराभक्ति नामक एकादशात्मक भक्तिमार्ग अपनाया है। पराभक्ति का ही दूसरा नाम ज्ञानयोग है, ऐसा श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

-श्रीमद्भगवद्गीता १८/५४

सच्चिदानंदघन-ब्रह्म में एकीभाव से स्थित प्रसन्न मन वाला योगी न तो किसी के लिये शोक करता है और न किसी की आकांक्षा ही करता है, ऐसा समस्त प्राणियों में समभाव वाला योगी मेरी पराभक्ति (जो तत्त्वज्ञान की पराकाष्ठा है तथा जिसको प्राप्त होकर और कुछ जानना शेष नहीं रहता वही यहाँ 'पराभक्ति' ज्ञान की 'परानिष्ठा', परमनैष्कर्म्यसिद्धि' और 'परमसिद्धि' इत्यादि नामों से कही गई है) को प्राप्त हो जाता है।

सिद्धों ने सहजयोग का अवलम्बन लेना विधेय बताया। जो बिना किसी कष्ट के, विधि-विधान के, सहज में ही सध जाये और जिससे स्वात्मा का साक्षात्कार हो जाये, वही सहजयोग कहकर सिद्धों ने इसको स्वीकार किया।

वृन्दावनीय-विशेषकर राधावल्लभी व हरिदासी संतों ने रसोपासना का आश्रय लेकर मात्र निकुंज-लीलागान व ध्यान को ही मुक्ति का साघन सिद्ध किया है।

तंत्र, आयुर्वेद, आगम, पुराण, स्मृति, ज्योतिष, व्याकरण, आदि-आदि प्रस्थानों ने भिन्न-भिन्न साधनों का प्रतिपादन कर साध्य रूप परब्रह्म-परमात्मा को पाना बताया है। सभी ने अपने-अपने मार्ग को निरापद, सुगम व श्रेष्ठ बताया है।

ऐसी स्थिति में साधक किस साधन को चुने जिससे कि उसको परमप्राप्तव्य परब्रह्म-परमात्मा रूपी साध्य की प्राप्ति हो सके।

चूँकि साधन अनेक हैं, साधक के पास सीमित समय, सीमित सामर्थ्य व सीमित श्रम है। वह अनेक साधनों का प्रयोग नहीं कर सकता। उसको किसी एक ही साधन, मार्ग का अनुसरण करना होता है। अतः उसको 'महाजनो येन गतः स पन्था' का परामर्श मानकर गुरु की शरण का अवलम्बन लेना होता है और गुरु द्वारा बताये मार्ग का

आश्रय लेकर ही आगे बढ़ना होता है।

वस्तुतः साधनामार्ग में श्रद्धा व विश्वास का होना अत्यावश्यक है। बिना श्रद्धा व विश्वास के साधन कभी भी फलदायी सिद्ध नहीं हो पाता। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस-लेखन रूपी साधना प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम श्रद्धा रूपी पार्वती एवं विश्वास रूपी शिव की वन्दना की है।

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।

रामचरितमानस १/२

मैं श्रद्धा रूपी भवानी एवं विश्वास रूपी शङ्कर की वंदना करता हूँ जिनके बिना हृद्देशस्थित परब्रह्म-परमात्मा का दर्शन संभव नहीं है।

ज्ञानमार्गी आचार्य शंकर ने ज्ञानमार्ग में साधन चतुष्टय का विधान किया है उसमें भी श्रद्धा का परिगणन किया गया है।

आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेकः परिगण्यते।
इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम्।।
शमादिषट्सम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम् ।

विवेकचूड़ामणि १९, २० पूर्वार्द्ध

पहला साधन नित्यानित्य वस्तु विवेक गिना जाता है। दूसरा लौकिक एवं पारलौकिक सुख-भोगों में वैराग्य का होना है। तीसरा शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा एवं विश्वास ये षड् सम्पत्तियाँ हैं और चौथा मुमुक्षुता है।

इनका अर्जन कर लेने पर ज्ञानमार्गानुसार श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन का अभ्यास किया जाता है। यही साधना के तीन सोपान हैं।

भक्तिमार्गियों में भी अनेक विभेद हैं। कोई भगवन्नामजप को ही सर्वस्व समझते हैं। कोई अपने इष्ट की लीलाओं के चिन्तन-मनन में ही निमग्न रहते हैं। कोई भगवद्विग्रह की मूर्तिसेवा में लगे रहना अभीष्ट समझते हैं तो कुछ कीर्तन व नृत्य को ही जीवन को धन्य करने का साधन मानते हैं। कुछ-कुछ भक्त भगवच्चर्चा करना, सुनना व पढने को ही भगवतप्राप्ति का साधन समझते हैं। इस सम्बन्ध में एक श्लोक मिलता है जिसके अनुसार हमें ज्ञात होता है कि नवधाभक्ति में से कौन ने किस भक्ति को भगवत्प्राप्ति का साधन मानकर उसी को सर्वस्व समझा ।

भागवतमहापुराण के अनुसार भक्ति नौ प्रकार की है। (१) श्रवण (२) कीर्तन (३) स्मरण (४) पादसेवन (५) अर्चन (६) वंदन (७) सख्य (८) दास्य और (९) आत्मनिवेदन ।

श्रवण-भक्ति के द्वारा राजा परीक्षित ने मोक्ष की प्राप्ति की। कीर्तन-भक्ति का आदर्श शुकदेवमुनि को माना गया है। उन्होंने राजा परीक्षित् को भगवद्गुणकीर्तन-कथन कर सात दिन में ही भगवत्प्राप्ति करा दी। स्मरण-भक्ति का आदर्श भक्तप्रवर प्रह्लाद को, पादसेवन-भक्ति की प्रवर्तिका भगवती लक्ष्मी को, पूजन-भक्ति महाराज पृथु जिनके कारण भूमि की संज्ञा पृथिवी हुई तथा जो शासन-व्यवस्था व खेती-बाड़ी-व्यवस्था को प्रारम्भ करने वाले भी कहे गये हैं, से आदर्श प्राप्त करके नवधा भक्ति में परिगणित हुई, वन्दन-भक्ति के आदर्श अक्रूर, दास्य-भक्ति के आचार्य हनुमानजी महाराज, सख्य के आदर्श अर्जुन और सर्वस्वार्पण में सर्वाग्रगण्य दैत्यराज बलि को माना जाता है।

कई बार कई विचारक इन्हें भक्ति की सीढियाँ कह देते है किन्तु ऐसा मानना भ्रमपूर्ण है। यदि ये भक्तिमार्ग की श्रेणियाँ होती तो प्रारम्भिक आठ अंग व अंतिम आत्मनिवेदना अंगी होती तथा स्वतंत्र न होती किन्तु ये नवों भक्तियाँ स्वतंत्र हैं। इन प्रत्येक से अनेक भक्तों को भगवतप्राप्ति हुई है। अतः ये भक्ति की सीढ़ियाँ न होकर भक्ति के प्रकार ही हैं।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

– श्रीमद्भागवत ७/५/२३

उदाहरणानि

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने।
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने, लक्ष्मी पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः ।
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम् ॥

कबीर-सम्मत साधन भक्ति

कबीर कहता जात हौं, सुणता है सब कोइ।
राम कहें भला होइगा, नहिंतर भला न होइ॥

कबीर-ग्रंथावली साषी, सुमिरण को अंग ।।१।।

(डॉ. माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित संस्करण)

मैं कबीर बहुत दिनों से कहता आ रहा हूँ और सारी दुनिया मेरी बात को सुनती भी आ रही है जिसका सारांश इतना ही है कि स्वात्मतत्त्व का साक्षात्कार रूप भला राम-नाम-स्मरण करने से ही होगा। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी साधन से नहीं होगा।

कबीर के उक्त डिण्डिमघोष को सुनकर पूर्वपक्षी कहता है, आपके कथन को सत्य मानने में क्या प्रमाण है। तब कबीर पुनः पूर्ण उत्साह के साथ अपनी बात को कहते हैं।

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस ।
राम नाम तत सार है, सब काहू उपदेस ॥२॥ (उक्त)

अनेक प्रकार की साधनाओं रूपी तत्त्वों का सार 'राम-नाम का अहर्निश स्मरण करना है' इसका उपदेश कथन सभी ने किया है। कबीर कहता है, उक्त कथन मैंने किया है; ब्रह्मा और महेश ने भी यही कथन किया है। अतः इसी का अवलम्बन स्वात्मसाक्षात्कार कराने में सर्वथा सक्षम है। वस्तुतः

तत्त तिलक तिहुँ लोक में, राम नाम निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार ॥३॥ (उक्त)

तीनों लोकों में सारों का सार, तत्त्वों का शिरोमणि-तत्त्व राम का नाम है। मुझ भक्त कबीर ने इस राम के नाम को अपने मस्तक पर विराजमान कर लिया है अर्थात् इसको ही जीवन का सर्वस्व मान लिया है जिससे मेरी शोभा महिमा अत्यधिक अपरम्पार हो रही है।

यहाँ पूर्वपक्षी कबीर के समक्ष एक उलझन और खड़ी करते हुए कहता है, परात्पर परब्रह्म-परमात्मा जिसे तुम राम के नाम से संबोधित करते हो, वह तो नाम और रूप से रहित है 'अस्ति भाति प्रिय रूप है, नाम रूप व्यभिचार' फिर तुम कैसे उसे नाम वाला बताकर उसके नाम-जप का व्याख्यान करते हो।

यद्यपि इस प्रश्न का उत्तर कबीर की वाणी में नहीं मिलता किन्तु दादू के सर्वाधिक व्युत्पन्न-मति शिष्य रज्जब इसका उत्तर देते हैं।

नाम निनामे के घरे, संताँ सोध सभाइ।
रज्जब माने रामजी, सुमस्यौं करी सहाइ॥

परब्रह्म-परमात्मा अनाम था। उसको पुकारने के लिये संतों ने सोच-विचारकर उसके कुछ नाम 'ॐ', 'राम', 'हरि' निश्चित् कर लिये और उन्हीं से उसको बुलाने लगे। परमात्मा के द्वारा संतों द्वारा निश्चित नाम को स्वीकार कर लिया गया। इसका पक्का प्रमाण यह है कि जब भी भक्तों द्वारा विपत्ति के समय उस परमात्मा को उस नाम से पुकारा गया, तब ही वह सहायता करने को दौड़ा आया, सहायता की।

अतः सिद्धान्त निष्पन्न होता है कि निर्गुण-निराकार, निर्विशेष परमात्मा का नाम संभव है और उसको उसके नाम से पुकारने पर वह तत्काल सहायता करने को तत्पर हो जाता है। अतः इस दुष्काल कलिकाल में परमात्मा की प्राप्ति का सरलतम तथा

सुगमतम उपाय राम-नाम-स्मरण ही है।

कबीर राम-नाम-स्मरण को ही भक्ति बताते हुए कहते

भगति भजन हरि नाँउँ है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरण सार।।४।। (उक्त)

परात्पर-परब्रह्म-परमात्मा हरि के नाम का भजन स्मरण ही भक्ति का स्वरूप है। इसके अतिरिक्त मूर्ति सेवा-पूजा, तीर्थ-व्रत-सेवन आदि सभी अपरिमित दु:खों को देने वाले हैं, दु:ख रूप हैं। अत: मुझ कबीर के अनुसार मनसा, वाचा और कर्मणा राम-नाम का अहर्निश तैलधारावत् स्मरण रूप भक्ति ही सार है। उक्त बात कबीर ने ही कही हो, सो बात नहीं है। भक्ति सिद्धांत के आचार्य श्रीरूप गोस्वामी ने भक्ति-रसामृतसिन्धु में भी यही बात इस प्रकार कही है ''रागानुगायां स्मरणस्य मुख्यता'' रागानुगा-भक्ति में भगवन्नाम-स्मरण की ही मुख्यता है। अन्य सभी गौण हैं। रागानुगा-भक्ति में न विधि है और न निषेध है। इसमें तो मात्र उपास्य का उसी प्रकार सतत्-चिंतन अभिप्रेत है जिस प्रकार गंगा का जल बिना रुके समस्त रुकावटों को समाप्त करता हुआ समुद्र में मिलने को सरपट दौड़ता है।

मद्गुणश्रुति मात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ।।
लक्षणं भक्ति योगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे।।

– श्रीमद्भागवतमहापुराण

जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखंड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार भगवान् के गुणों के श्रवणमात्र से मन की गति तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से भगवान् की ओर उन्मुख हो जाना तथा उस पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य-प्रेम हो जाना, यह निर्गुण-भक्ति का लक्षण कहा गया है। कबीर उक्त जैसे ही विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं-

कबीर मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि।
इब मन रामहि ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ।।८।।(उक्त)

कबीर कहता है, मेरा मन अहर्निश राम का स्मरण करता है जिससे मेरे मन में राम का स्थाई निवास हो गया है। परिणामस्वरूप अब मेरा मन राम ही हो गया है। जब मैं स्वयं ही राम-रूप हो गया हूँ तब किसके समक्ष मस्तक झुका-कर प्रमाण करूँ।

एक अन्य साषी में कबीर कहते हैं-

कबीर जैसे माया मन रमैं, यौं जे राम रमाइ।
तौ तारामंडल छाड़ि करि, जहाँ केसौ तहाँ जाइ ॥२४॥ (उक्त)

कबीर कहता है, संसारी जीवों का मन जिस प्रकार माया की प्राप्ति, रक्षण तथा भोग में रमता है, यदि वैसे ही वह राम में रमने लग जाये तो निश्चय ही वह तारामंडल ब्रह्मा के लोक का अतिक्रमण करके उस लोक में गमन कर जाये जहाँ केशव का निवास है। (यहाँ त्रिकुटी ही ब्रह्मा का लोक तथा सहस्रारचक्र ही केशव का निवास स्थान है)

एक अन्य साषी में कबीर कहते हैं

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरताँ हरि नाम।
सूली ऊपर नट-विद्या, गिरौं त नांहीं ठाम॥२९॥ (उक्त)

जिस प्रकार नट दो बाँसों के शिरों पर बँधी रस्सी पर चलते हुए नाना करतब दिखाता तो है किन्तु उसकी चित्तवृत्ति रस्सी में ही लगी रहती है कि कहीं मेरा पैर रस्सी से हट न जाये और मैं गिर न जाऊँ। इसी प्रकार साधक शरीर निर्वाह के लिये समस्त कार्य करते हुए भी अपनी चित्तवृत्ति राम-नाम-स्मरण में लगाकर रखे जिससे उसका तादात्म्य राम-नाम से हो जाये। यही अनन्य-भक्ति का स्वरूप है, कबीर के अनुसार।

श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन से यही बात इस प्रकार कही है-

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।(गीता)

इसलिये अपने कर्त्तव्य-कर्म युद्ध को करता हुआ भी सर्वकाल में मेरा ही स्मरण कर। मेरे में मन व बुद्धि को समर्पित कर देने से तू मुझे ही प्राप्त होगा, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

■

जीवात्मा के स्थूल शरीर का उत्पत्ति-क्रम

सिद्धसिद्धान्त पद्धति के अनुसार

अथ गर्भोली पिण्डोत्पत्तिर्भवति नरनारीसंयोगे ऋतुकाले रजोविन्दुसंयोगे जीवः ॥ ७० ॥

ऋतु-काल में नर और नारी के संभोग संयोग (संगम) से निकले हुए रज-बिंदु का स्त्री की योनि में ऐक्य होने से जीव के स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है ॥ ७० ॥

विशेष : शिवरूप बिंदु है और बीज शक्ति रूप है। इन दोनों का परस्पर संबंध ही नाद कहा गया है। व्यष्टि जीव सहित शुक्र भी बिंदु है, पुरुष के वीर्य में अन्य जीवात्मा निवास करता है, पर उसके शरीर में उसे सुख-दुखादि प्रभावित नहीं करते, पर संभोग-काल में भोगार्थ कर्मवश वह अन्य जीवात्मा पुरुष के बिंदु से स्त्री के गर्भाशय में रज में सिञ्चित होकर स्थूल शरीर (रज-वीर्य से उत्पन्न शरीर) में जन्म लेने में समर्थ होता है। अत एव रज और बिंदु का ऐक्य ही भोगकर्म के परिणामस्वरूप स्थूल शरीर की उत्पत्ति का कारण है।

प्रथमदिने कललं भवति सप्तरात्रे बुद्बुदाकारं भवति। अर्धमासे गोलाकारं भवति। मासमात्रेण कठिनं मासद्वयेन शिरो भवति। तृतीये मासि हस्तपादादिकं भवति। चतुर्थे मासि चक्षुःकर्णादि नासिकामुखमेढ़गुदं भवति। पंचमे मासि पृष्ठोदरौ भवतः। षष्ठे मासि नखकेशादिकं भवति सप्तमे मासि सर्वचेतनयुक्तो भवति। अष्टमे मासि सर्वलक्षणयुक्तो भवति। नवमे मासि सत्यज्ञानयुक्तो भवति। दशमे मासि योनिसंस्पर्शादज्ञानी बालको भवति ॥ ७१ ॥

(माता के गर्भ में प्रविष्ट जीवात्मा के स्थूल शरीर के निर्माण (सृष्टि) क्रम पर प्रकाश डालते हुए महायोगी गोरखनाथ जी का कथन है-) नर-नारी के परस्पर संभोग के परिणामस्वरूप वीर्य और रज का मिश्रित द्रव पहले दिन कुछ गाढ़ा सा रहता है। सात दिन की अवधि में यह बुलबुले का आकार धारण कर लेता है। पंद्रह दिनों में यह गोल आकार का (पिंड) हो जाता है। एक माह मैं यह स्थूल ठोस-कठिन सा हो जाता है और दो माह में (उस गोलाकार पिंड में) सिर बनता है, तीन माह में उसमें हाथ-पैर आदि अंग बनते हैं, चार माह की अवधि में उसमें नेत्र, कान, नाक, मुख, लिंग, गुदा के आकार बन जाते हैं, पाँचवें मास में पीठ और पेट आकारित होते हैं, छठे माह में नख, बाल आदि उत्पन्न होते हैं; सातवें माह में उसमें चेतनता का समस्त अंगों में संचार होता है। आठवें मास में उसमें सभी लक्षण पूरे हो

जाते हैं। नौवें मास में उसे (चेतन जीवात्मा को) अपने सत्स्वरूप का ज्ञान होता है। (उसे पिछले जन्म के कर्मों और तज्जन्य दु:खों का स्मरण हो आता है और वह परमात्मा से प्रार्थना करता है कि मुझे कृपा करके इस गर्भवास नरक यातना से मुक्त कीजिए। दसवें मास में गर्भ से बाहर होते समय योनि-द्वार का स्पर्श होते ही वह अज्ञानी बालक रूप में जन्म लेता है) ।। ७१ ।।

शूक्राधिकेषु पुरुषो रक्ताधिका कन्यका समशुक्ररक्ताभ्यां नपुंसकः परस्परं चिंताव्याकुलत्वादन्धः कुब्जो वामनः पङ्गुरङ्गहीनश्च भवति परस्परं रतिकालेऽङ्गनि:पीडनकरगुणैः शुक्रो द्विस्त्रिवारं पतति, येन द्वितीयो बालको भवति ।। ७२ ।।

यदि पिता का वीर्य गर्भाशय में अधिक सिंचित होता है और माता का रक्त (रज) कम है तो संभोग के परिणामस्वरूप पुरुष (बालक) शरीर उत्पन्न होता है, माता का रज अधिक होने से कन्या-शरीर की उत्पत्ति होती है। पिता-माता के वीर्य और रज के समान (मिश्रित) द्रव से नपुंसक संतान की प्राप्ति होती है। यदि संभोग के समय स्त्री-पुरुष, दोनों चिंताग्रस्त हों तो जन्म लेने वाली संतान अंधी, कुबड़ी, वामन (बोनी), लंगड़ी, अंगहीन होती है। रति प्रसंग के समय आपस में अंगमर्दन से वीर्य स्खलन में अवरोध होने पर गर्भाशय में रुक-रुक कर दुबारा वीर्यपात होते रहने पर एक से अधिक संतान उत्पन्न होती है।। ७२।।

सार्धपलत्रयं शुक्रो, विंशतिपलं रक्तं, द्वादशपलं मेदः, दशपलं मज्जा, शतपलं मांसं, दशपलं पित्तं, विंशतिपलं श्लेष्मा, तद्द्वातः स्यात् षष्ट्यधिकशतत्रयमस्थीन्यस्थिमात्रं संधयः सार्धत्रयकोटिरोमकूपाणि

विशेष : १ पल ४ कर्ष के बराबर होता है, और १ कर्ष का तौल १६ मासा है, १ मासा १ ग्राम के तौल के बराबर होता है, इस तरह १ पल का तौल ६४ ग्राम है।

प्रस्थानत्रयी

प्रस्थानत्रयी वेदान्तदर्शन की आधारशिला है। इसका उद्देश्य उपनिषद्-तत्त्व को सिद्धान्त, साधन और साध्य तीनों स्तरों पर एक समग्र, तर्कसंगत और अनुभूतिपरक रूप में स्थापित करना है। शास्त्रीय परंपरा में प्रस्थानत्रयी का सार-तत्त्व मूलतः ब्रह्मविद्या है अर्थात् ब्रह्म और आत्मा की अभिन्नता का प्रत्यक्ष बोध है।

१.प्रस्थानत्रयी का स्वरूप (संक्षेप)- प्रस्थानत्रयी तीन शास्त्रीय "प्रस्थान" (मार्ग) हैं-

श्रुति प्रस्थान : उपनिषद्।

स्मृति प्रस्थान : भगवद्गीता।

न्याय प्रस्थान : ब्रह्मसूत्र।

इन तीनों का एक ही लक्ष्य है- मोक्ष; पर साधन और शैली भिन्न हैं।

२.प्रस्थानत्रयी का केन्द्रीय सारतत्त्व-- (क) ब्रह्म आत्मैक्य (तत्त्वबोध)-- उपनिषदों का निष्कर्ष है "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः" अर्थात् ब्रह्म ही परम सत्य है, जगत् नाम-रूपात्मक व्यवहार है, और जीव का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म से भिन्न नहीं। यही प्रस्थानत्रयी का मूल तत्त्व है। महावाक्य साक्ष्य- तत्त्वमसि (छान्दोग्य) अहं ब्रह्मास्मि (बृहदारण्यक) प्रज्ञानं ब्रह्म (ऐतरेय) ये वाक्य आत्मा-ब्रह्म की अभेद-सिद्धि करते हैं।

(ख) अविद्या-निवृत्ति ही मोक्ष है। प्रस्थानत्रयी के अनुसार बंधन कर्मजन्य नहीं, अपितु अविद्या-जन्य है। अतः मोक्ष कोई नई प्राप्ति नहीं, बल्कि अज्ञान का क्षय है। "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" (गीता) ज्ञान से ही अविद्या का नाश होता है यही मुक्तिदर्शन है।

(ग) ज्ञान-कर्म-भक्ति का समन्वय उपनिषद्- ज्ञान-प्रधान है। भगवद्गीता- ज्ञान-भक्ति-कर्म का समन्वय है। ब्रह्मसूत्र- तर्क द्वारा सिद्धान्त-स्थापन है। गीता स्पष्ट कहती है कि कर्म और भक्ति ज्ञान की शुद्धि-सहायिका हैं; अंतिम साध्य आत्मज्ञान ही है।

३.साधन चतुष्टय और अधिकार- प्रस्थानत्रयी का विवेचन केवल तत्त्व नहीं, अधिकार-निर्णय भी करता है।

मोक्ष-साधना के लिए शास्त्र चार योग्यताओं को अनिवार्य मानते है नित्य-अनित्य विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान)। मुमुक्षुत्व- इनके बिना तत्त्वज्ञान केवल बौद्धिक रहता है, अनुभूति नहीं बनता।

४.ब्रह्मसूत्र का सार निष्कर्ष-

ब्रह्मसूत्र तर्कपूर्वक यह स्थापित करता है कि ब्रह्म कारण और कार्य से परे है। ब्रह्म शब्दप्रमाण (श्रुति) से ही जाना जाता है। मोक्ष ज्ञानजन्य है, न कि कर्मजन्य। "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" जिज्ञासा ही साधना का प्रारम्भ है।

५.समग्र निष्कर्ष (सार में)-

प्रस्थानत्रयी का सार-तत्त्व यह है कि आत्मा और ब्रह्म एक ही तत्त्व हैं। बंधन अविद्या से है, मुक्ति ज्ञान से। कर्म और भक्ति साधन हैं, ज्ञान साध्य है। मोक्ष कोई लोकगमन नहीं, स्वस्वरूप-स्थिति है। अतः प्रस्थानत्रयी का परम संदेश है "ज्ञान से प्रस्थान नहीं, बल्कि अज्ञान से निवृत्ति ही वास्तविक प्रस्थान है।"

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज

मानव जीवन का परम लक्ष्य है परमानन्द

*आचार्य हृदयनारायण शुक्ल

मानव जीवन का परम लक्ष्य दु:खों की निवृत्ति तथा परमानंद की प्राप्ति है।

वैसे भी यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो प्रत्येक मानव की प्रतिदिन की प्रत्येक चर्चा के मूल में उसकी एक मात्र आकांक्षा,आनन्द प्राप्ति की ही है। मानव जितने भी कार्य करता है,वे चाहे शारीरिक हों अथवा मानसिक ,सामाजिक हो या आध्यात्मिक, प्रत्येक क्रिया में उसकी अभिलाषा आनंद प्राप्ति की ही हुआ करती है। किन्तु देखने मे यह आता है कि नाना प्रकार के कार्यों के करते रहने पर भी हमको हमारा इच्छित आनंद नही मिलता।

अगर आनंद मिल गया तो हमारे जीवन की भाग दौड़ समाप्त हो गई होती।

जन्म जन्मांतरों से आज तक हमारी यह दौड़ अविराम चल रही है। कहीं विश्राम नही, आराम नही, विराम नही। इसका अर्थ यह हुआ कि जो हमें चाहिए था ,वह अभी तक मिला नहीं ।आखिर ऐसा क्यों ? हम निरंतर प्रयत्नशील हैं,निरंतर कार्यरत हैं,फिर भी हमारी मांग पूर्ण क्यों नहीं हुई ? विचार करने पर पता चलता है कि हमारी खोज ही गलत थी। मर्ज तो कुछ और था किन्तु दवा कुछ और लेते रहे ,फिर आराम कहाँ से होता?

हम जीवन में आनंद चाहते हैं पूर्ण ,
पर खोज रहे हैं अपूर्णता में,
हम आनंद चाहते हैं अविनाशी पर उसे तलाश करते हैं विनाशी में ,

जीवन में यदि कुछ पाना चाहते हैं तो वह उसी के पास मिलेगा जिसके पास है। जो स्वयं ही उसी तलाश मे भटक रहा है तो फिर वह कहां से दे सकेगा? यदि वास्तव में हमें अपने मानव जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करना है, तो परिश्रम करना ही होगा, साधना करनी ही पड़ेगी ।

परंतु प्राय: देखने में आता है कि काफी समय तक साधनरत रहने के बाद भी साधक की वृत्ति भगवदाकार नहीं बन पाती ,मन भौतिक प्रपंच का ही अधिक चिन्तन किया करता है। इसका एक मात्र कारण यह है कि जब हम सत्संग को अथवा महापुरुषों के संदेश को मात्र कर्णेन्द्रिय का विषय बना लेते हैं तब साधक के जीवन में ऐसी स्थिति आया करती है।

लेकिन मात्र श्रवण से ही काम बनने वाला नहीं, आवश्यकता है एकाग्रचित होकर

*प्रवक्ता श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ गोरखपुर

संत महापुरुषों के विचारों को निरंतर श्रवण करने की फिर एकांत में उस पर मनन करने की और फिर दृढ़ संकल्प द्वारा जीवन में उतारने की । तभी हमारी वृत्ति अपने लक्ष्य के प्रति सजग होकर जगत के चिंतन से हटकर भगवदाकार बन सकेगी ।

और तब सचमुच हमारे जीवन में परम लक्ष्य आनंद ,परमानंद ,दिव्यानंद का अनुभव होगा।

समझ लें सुख वहीं है जहां शांति है । शांति वहीं हैं जहां भाव है ।

भाव वहीं है जो भगवान् से युक्त हो गया है।

अतः प्रभु का स्मरण करें तो इस तरह करें कि जगत का विस्मरण हो जाए और भगवत आनंद की प्राप्ति हो जाए।।

■

श्री गोरखनाथ मन्दिर के प्रकाशन

1.	गोरखदर्शन	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	150.00
2.	महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ	डॉ. भगवती प्रसाद सिंह	80.00
3.	नाथ योग	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	10.00
4.	आदर्श योगी	रघुनाथ शुक्ल	40.00
5.	महायोगी गुरु गोरखनाथ एवं उनकी तपस्थली	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
6.	गोरखबानी	रामलाल श्रीवास्तव	110.00
7.	गोरक्षसिद्धान्त संग्रह	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
8.	श्री गोरक्ष वैदिक पूजा पद्धति	वेदाचार्य रामानुज त्रिपाठी	8.00
9.	अमनस्क योग	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
10.	गोरक्ष पद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
11.	विवेक मार्तण्ड		7.00
12.	महार्थ मंजरी		6.00
13.	गोरखचरित्र	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
14.	हठयोग प्रदीपिका	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
15.	सिद्धसिद्धान्तपद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	25.00
16.	योग रहस्य	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	25.00
17.	योग बीज	रामलाल श्रीवास्तव	6.00
18.	शाबर चिंतामणि	नित्यनाथ सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ	7.00
19.	योगी सम्प्रदाय (नित्यकर्म संचय)		90.00
20.	गोरख चालीसा		2.00
21.	नाथसिद्ध चरितामृत	रामलाल श्रीवास्तव	70.00
22.	नाथ पंथ गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में	विष्णुदत्त कुकरेती	30.00
23.	अमरकाया महायोगी गोरखनाथ	श्रीमती माया देवी	10.00
24.	युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ ने कहा था	महन्त योगी आदित्यनाथ	12.00
25.	गोरखनाथ और नाथसिद्ध	डॉ. अनुज प्रताप सिंह	130.00
26.	गोरक्षदर्शन	विजय पाल सिंह	40.00
27.	तन प्रकाश	श्री श्री 108 बाबा चुन्नीनाथ जी	20.00
28.	हठयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
29.	यौगिक षट्कर्म	महन्त योगी आदित्यनाथ	21.00
30.	नाथ सिद्धों का तात्त्विक विवेचन	अनुज प्रताप सिंह	70.00
31.	गोरखमहिमा	महेन्द्र नाथ गोस्वामी	30.00
32.	सुभाषित त्रिशती	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
33.	राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महन्त अवेद्यनाथ (3 खण्ड)	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	1100.00
34.	राजयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
35.	Philosophy of Gorakhnath	A.K. Banerjee	175.00
36.	The Nath-Yogi Sampradaya and The Gorakhnath Temple		3.50
37.	An Introduction to Nath-Yoga	A.K. Banerjee	15.00
38	महन्त अवेद्यनाथ स्मृति ग्रन्थ	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	600.00
39	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	500.00
40	योग एवं महायोगी गोरखनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	175.00
41	महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ		40.00
42	श्रीगोरखनाथ मन्दिर एवं गोरखपुर का इतिहास		40.00
43	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ		40.00
44	युगद्रष्टा महन्त दिग्विजयनाथ		50.00
45	राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ		50.00

ए.पी./जी.आर-125/14 ए.पी./29075/76

फलों की रानी

नारंगी

आम फलों का राजा है तो फलों की रानी बनने के सभी गुण नारंगी में हैं, इसी कारण नारंगी को फलों की रानी कहा जाता है।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में नारंगी का उल्लेख मिलता है- **'नारङ्गो मधुराम्लः स्याद्रोचनो वातनाशनः'** (निघंटु,मिश्रप्र० ६। ६३) । सुश्रुतसंहिता में लिखा है-

अम्लं समधुरं हृद्यं विशदं भक्तिरोचनम्।
वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नारङ्गस्य फलं गुरु ॥

(सु०सं०सूत्र० ४६ । १६१)

अर्थात् नारंगी अम्ल, मधुर, हृदयके लिये प्रिय, विशद, भोजन में रुचिकर, वातनाशक, दुर्जर तथा गुरुपाकी (देरमें पचनेवाला) होता है।

नारंगीकी विशेषता यह है कि इसमें विद्यमान फ्रक्टोज, डेक्स्ट्रोज, खनिज एवं विटामिन -ये शरीरमें पहुँचते ही ऊर्जा देना शुरू कर देते हैं। इसका रस देर से पचता है।

नारंगी में प्रचुर मात्रा में विटामिन 'सी' है। पोटैशियम एवं लोहा उच्चमान का है। नारंगी सेवन से हृदय, स्नायु-संस्थान तथा मस्तिष्क में नयी शक्ति आ जाती है। बच्चे-बूढ़े, रोगी और दुबले-पतले लोग अपनी निर्बलता दूर करने के लिये इसके सेवन से लाभ उठा सकते हैं। तेज बुखार में इसके सेवन से तापमान कम हो जाता है। इसका साइट्रिक एसिड मूत्ररोगों और किडनी रोगोंको दूर करता है। इससे मूत्र साफ आता है। किडनी रोग से बचने के लिये नारंगी का सेवन करना चाहिये।

छोटे बच्चोंको स्वस्थ और सुपुष्ट बनाने के लिये दूध में चौथाई भाग मीठी नारंगी का रस मिलाकर पिलाना चाहिये। यह उनके लिये एक आदर्श टॉनिक है। इससे बच्चों में नयी ऊर्जा, नयी शक्ति और नया उत्साह आ जाता है। दाँत निकलते समय बच्चों को उलटी होती है तथा हरे-पीले दस्त होते हैं। इनमें नारंगी रस देने से उनकी बेचैनी दूर होती है तथा पाचनशक्ति बढ़ जाती है। दाँतों और मसूढ़ों के रोग भी इसके सेवन से दूर होते हैं।

शरीर से दुर्बल, गर्भवती महिलाओं, कब्ज, बवासीर, बेरी-बेरी, अपच, पेट में गैस, जोड़ों का दर्द, गठिया, ब्लड प्रेशर, चर्मरोग, यकृत् रोग से ग्रस्त रोगियों के लिये नारंगी का रस परम लाभकारी है। जिन्हें दूध नहीं पचता या जो केवल दूध पर निर्भर हैं, उन्हें नारंगी का रस अवश्य सेवन करना चाहिये। दूध में विटामिन 'बी कम्पलेक्स' नहीं के बराबर है। अतः इसकी पूर्ति नारंगी के सेवन से हो जाती है।

मुँहासे, कील और झाँई तथा चेहरे के साँवलेपन को दूर करने के लिये नारंगी के सुखाये छिलकों का महीन चूर्ण गुलाब जल या कच्चे दूध में मिलाकर पीसकर आधा घंटा तक लेप लगाये, इससे कुछ दिनों में चेहरा साफ, सुन्दर और कान्तिमान् हो जायगा।

नारंगी सर्वरोगनाशक और शरीर के लिये परम हितकारी फल है। खट्टी नारंगी का सेवन बच्चों-बूढ़ों, गर्भवती महिलाओं, अम्लपित्त एवं पेटमें अल्सरवालों के लिये निषिद्ध है। (अ० भारती)

(डॉ० श्री विजय कुमार जी पाठक,
बी०ए०एम०एस०)

प्रकाशक :
गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर-२७३०१५
web: www.gorakhnathmandir.in | E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com
दूरभाष: (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४, फैक्स: ०५५१-२२५५४५५